

नेहरू और आम्बेडकर

भारतीय आधुनिकता के दो चेहरे

आलोक टंडन

हमारे स्वतंत्रता संग्राम के महानायकों, गाँधी और नेहरू तथा गाँधी और आम्बेडकर, के आपसी रिश्तों और वैचारिक अवदानों के तुलनात्मक अध्ययन पर काफ़ी कुछ लिखा गया है। लेकिन, नेहरू और आम्बेडकर के वैचारिक-राजनीतिक संबंधों के बारे में कम ही पढ़ने को मिलता है जबकि भारतीय लोकतंत्र के निर्माण पर दोनों की अमिट छाप है। अलग-अलग पृष्ठभूमि से संबंधित होने के बावजूद आधुनिकता की परियोजना में दोनों की आस्था है, यद्यपि कई महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर आपसी मतभेद भी हैं। इस वैचारिक समानता-असमानता के पीछे मेरी दृष्टि में आधुनिकता के दो भिन्न-भिन्न संस्करण हैं जिनमें धर्म की भूमिका के बारे में मतभेद अहम है। आज लोकवृत्त में धर्म की भूमिका के बारे में पुनर्विचार की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। दरअसल, पश्चिम भी धर्म को निजी जीवन तक सीमित रखने में पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर पाया है। इसलिए यह चिंतन वैकल्पिक आधुनिकताओं के बीच भारतीय आधुनिकता के मॉडल की खोज के चयन के लिए भी महत्त्वपूर्ण है कि उसका धर्म से क्या संबंध अपेक्षित है। प्रस्तुत आलेख के प्रथम खण्ड में नेहरू और आम्बेडकर के विचारों में समानताओं और असमानताओं पर विचार करने का प्रयत्न है। दूसरे खण्ड

में उनकी वैचारिक भिन्नता के पीछे दिये गये तर्कों और युक्तियों के विश्लेषण का प्रयास है और तीसरे खण्ड में दोनों के विचारों का ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यांकन करके यह समझने की कोशिश है कि भविष्य-निर्माण के लिए उनकी क्या प्रासंगिकता है। ऐतिहासिक कारणों से नेहरू और आम्बेडकर की लोकप्रियता का ग्राफ़ स्वतंत्र भारत में उनकी मृत्यु के उपरांत काफ़ी ऊपर-नीचे हुआ है। यह विचलन उनके अवदान के तटस्थ मूल्यांकन में बाधा न बनने पाए इसलिए में विशेष सतर्कता बरतने का प्रयत्न किया जाएगा। हमें इंदिरा-राजीव-राहुल गाँधी की दृष्टि से नेहरू को और कांशीराम-मायावती के नज़रिये से आम्बेडकर को समझने की भूल नहीं करनी चाहिए।

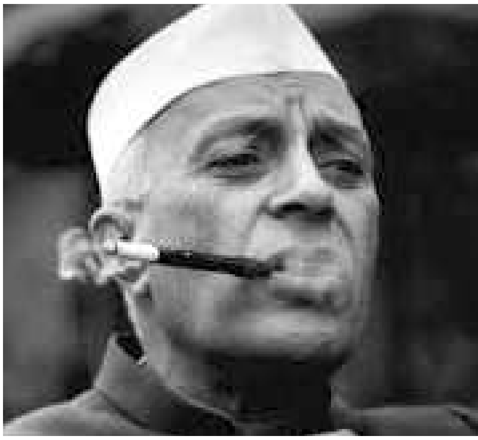
I

इससे पहले कि हम नेहरू और आम्बेडकर के विचारों में समानता-असमानता का विवेचन करें, उनकी पृष्ठभूमियों में अंतर रेखांकित करना ज़रूरी है। नेहरू का जन्म एक कश्मीरी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता मोतीलाल नेहरू इलाहाबाद के एक सफल वकील थे जो बाद में गाँधी से प्रभावित होकर स्वतंत्रता संग्राम में भागीदार बने। समृद्ध बचपन और शिक्षा-दीक्षा हैरो और केम्ब्रिज में होने के कारण नेहरू का प्रारम्भिक जीवन बिना किसी अभाव के व्यतीत हुआ। आनंद भवन नाम का उनका शानदार घर राजनीतिक गतिविधियों का केंद्र होने के कारण राजनीतिक चेतना नेहरू को विरासत में मिली। बाद में कांग्रेस की अगली पंक्ति के नेता होने के नाते की गयी देश-विदेश की यात्राओं, विशेषकर सोवियत यूनियन, का उनके विचारों के निर्माण में बड़ा योगदान रहा। स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री के रूप में चुनौतियों का सामना करते हुए उन्हें अपने विचारों में संशोधन-परिवर्धन का भी अवसर मिला।

आम्बेडकर का जन्म एक अछूत-महार परिवार में हुआ था। उनके पिता रामजी सेना में सूबेदार के पद तक पहुँच गये थे। उन्हें संतों की अमृतवाणी पढ़ने की बेहद लगन थी। आम्बेडकर का बचपन, प्रारम्भिक और बाद की शिक्षा जाति प्रथा और छुआछूत के कटु अनुभवों की दास्तान है जिसने उनका अवचेतन सामाजिक विषमता के प्रहारों से घायल हो गया। *गौतम बुद्ध का जीवन चरित्र* पढ़ने के बाद वर्णाश्रम धर्म को पोषित करने वाली वेद-गीता की परम्परा से उनका मोहभंग हो गया। बड़ौदा रियासत के महाराजा सैयाजी राव गायकवाड़ से मिली छात्रवृत्ति और शिक्षा-प्राप्ति के बाद दस वर्ष तक रियासत की सेवा करने के इक़रारनामे पर हस्ताक्षर करके वे उच्च शिक्षा प्राप्त करने कोलम्बिया विश्वविद्यालय गये और पीएचडी की उपाधि प्राप्त की। बाद में (1920-23) लंदन स्कूल ऑफ़ इकॉनॉमिक्स से उन्होंने डीएससी की उपाधि अर्जित करने के साथ-साथ क़ानून की पढ़ाई भी पूरी की। इस तरह आम्बेडकर के विचारों के निर्माण में उनकी अध्ययनशीलता और जातिगत विषमता के कटु अनुभवों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

स्पष्ट है कि नेहरू और आम्बेडकर की पृष्ठभूमियों में अंतर और समानता दोनों देखी जा सकती है जो आगे चल कर उनके सरोकारों में अभिव्यक्त हुई। दोनों ने विदेश में रह कर आधुनिक शिक्षा प्राप्त की जिसने उन्हें स्वतंत्रता, समानता, भाईचारे के आदर्शों और औद्योगीकरण के ज़रिये समाज में होते परिवर्तनों से अवगत कराया। परिणामस्वरूप दोनों ही आधुनिकता के प्रबल समर्थक बन गये। लेकिन अपने जीवनानुभवों में अंतर के कारण धर्म-परम्परा के प्रति दोनों का दृष्टिकोण एक सा नहीं रहा। जातिगत असमानता का समूल नाश जहाँ आम्बेडकर के जीवन का प्रथम लक्ष्य बन गया, वहीं नेहरू के लिए यह विषय, स्वतंत्रता संघर्ष के मुक़ाबले कभी महत्त्वपूर्ण नहीं रहा। इसी कारण दोनों की आधुनिकता का मॉडल एक सा नहीं है। आगे हम इसी पर रोशनी डालने का प्रयास करेंगे।

लोकतंत्र : लोकतंत्र पर नेहरू की अगाध आस्था थी। न केवल इसलिए कि इसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता का सम्मान होता है अपितु इसलिए भी कि भारत जैसे विविधता वाले देश को एकताबद्ध





नेहरू का सेकुलरवाद भारत की एकता के लिए एक ऐतिहासिक ज़रूरत थी। ... आज जब सारा विश्व धार्मिक आतंकवाद से जूझ रहा है, धर्म के नकारात्मक पक्ष को नियंत्रित करने के लिए सेकुलरवाद की प्रासंगिकता से इंकार नहीं किया जा सकता। आम्बेडकर की स्थिति नेहरू से भिन्न है जैसा कि हम पूर्व खण्ड में विवेचित कर चुके हैं। वे धर्म के धनात्मक पक्ष— सामाजिक नैतिकता देने की क्षमता को स्वीकार करते हुए अपने आधुनिकता के प्रोजेक्ट को उससे जोड़ना चाहते हैं।

रखने की इससे अच्छी कोई शासन प्रणाली नहीं हो सकती। इसके लिए उन्होंने उदार संसदीय लोकतंत्र का वेस्टमिंस्टर मॉडल चुना क्योंकि पूर्वपरिचित होने के कारण भारत में इसके स्थायित्व की सम्भावना ज़्यादा थी। साधन की पवित्रता की धारणा तो उन्होंने गाँधी से ली, किंतु सत्ता की विकेंद्रित अवधारणा को यह कहकर निरस्त कर दिया कि इससे राष्ट्रीय एकता में कमी आएगी और पूर्व की तरह हम बाहरी हमलों से निपट नहीं पाएँगे। इसीलिए उन्होंने सशक्त केंद्रीय सत्ता के ऐसे संघीय ढाँचे को अपनाया जिसमें राज्यों को शासन की स्वायत्ता प्राप्त है। नेहरू जानते थे कि संसदीय लोकतंत्र की सफलता के लिए मज़बूत विपक्ष का होना अनिवार्य है जो उनके समय में नहीं था, इसलिए प्रारम्भिक दिनों में, कई बार वे स्वयं विरोधी दल के नेता की तरह सरकार की नीतियों और अपने साथियों की स्वयं आलोचना करके एवं पत्रकारों को इसके लिए प्रोत्साहित करके इस कमी को पूरा करने का प्रयास करते थे।

भारतीय लोकतंत्र के संविधान के मसविदे को स्वरूप देने वाली समिति के चेयरमैन के रूप में डॉ. आम्बेडकर के अभूतपूर्व योगदान को कौन भूल सकता है। उनके द्वारा 25 नवम्बर, 1949 को संविधान सभा में दिया गया अंतिम भाषण आज भी प्रासंगिक जान पड़ता है जिसमें उन्होंने लोकतंत्र की सफलता के लिए तीन चेतावनियाँ दी थीं। पहली, लोकतंत्र की स्थापना के उपरांत समाज-परिवर्तन के लिए हिंसक और असंवैधानिक तरीक़े अपनाना अराजकता को बढ़ावा देना है जिसका कोई औचित्य नहीं है। जितनी जल्दी इसे छोड़ दिया जाए उतना ही लोकतंत्र के स्वास्थ्य के लिए अच्छा होगा। दूसरी, महान नेताओं का सम्मान करना उचित है किंतु उनकी भक्ति अनुचित है। न हमें अपनी स्वतंत्रता उनके चरणों में समर्पित करना चाहिए और न उनको ऐसी शक्तियों से लैस होने देना चाहिए कि वे

उसका हनन कर सकें। तीसरी चेतावनी सबसे महत्त्वपूर्ण है जिसे उन्हीं के शब्दों में रखने का लोभ संवरण करना मुश्किल है :

> तीसरी महत्त्वपूर्ण बात ये है कि हमें केवल राजनीतिक लोकतंत्र से संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। हमें यह बात भली-भाँति समझ लेनी चाहिए कि सामाजिक लोकतंत्र के बिना राजनीतिक लोकतंत्र जीवित नहीं रह सकता ...भारत का समाज एक सोपानिक असमानता की भित्ति पर खड़ा है जिसमें कुछ लोगों को ऊँचा समझा जाता है और दूसरों को हीन मान लिया जाता है। आर्थिक दृष्टि से यह एक ऐसा समाज है जिसमें कुछ लोगों के पास तो बेपनाह सम्पत्ति है जबकि बाक़ी लोग बेतहाशा ग़रीबी का जीवन गुज़ारते हैं ... 26 जनवरी, 1950 को जब हमने एक लोकतांत्रिक संविधान का अंगीकार किया तो यह एक अंतर्विरोधी क़दम था ... इससे राजनीति में तो समानता स्थापित हो जाएगी परंतु आर्थिक जीवन में ग़ैर-बराबरी बरक़रार रहेगी। राजनीति में तो हम एक वोट-एक मूल्य के सिद्धांत को मान्यता देते रहेंगे लेकिन सामाजिक-आर्थिक संरचना की बाध्यता के कारण हम इन क्षेत्रों में व्यक्ति की गरिमा के सिद्धांत को नकारते रहेंगे। आख़िर अंतर्विरोधों से भरे इस जीवन को हम कब तक खींचेंगे? अपने सामाजिक-आर्थिक जीवन में हम कब तक समानता से कन्नी काटते रहेंगे? अगर हम लम्बे समय तक यही रवैय्या अपनाते रहे तो हमारा राजनीतिक लोकतंत्र निस्संदेह ख़तरे में पड़ जाएगा।[1]

स्वतत्रंता-प्राप्ति के बाद का इतिहास इस बात का साक्षी है कि हमने उक्त चेतावनियों पर पूरा ध्यान नहीं दिया, इसी कारण आज भी हमारा लोकतंत्र कई बार राजवंशीय लोकतंत्र सा लगता है और हिंसक-अराजक प्रतिरोधों का सामना नहीं कर पा रहा है। संविधानपरक संसदीय लोकतंत्र के विचार और संस्थानीकरण में नेहरू और आम्बेडकर समान रूप से सहभागी थे। लोकतांत्रिक परम्पराओं के निर्माण में नेहरू ने अपने शासनकाल में अभूतपूर्व योगदान किया। दोनों ने हमें ख़तरों और सामाजिक अंतर्विरोधों के प्रति आगाह किया, किंतु राजनीतिक लोकतंत्र को सामाजिक लोकतंत्र में बदलने की दृष्टि देने का कार्य आम्बेडकर ने ही किया। सामाजिक लोकतंत्र को परिभाषित करते हुए उन्होंने कहा था :

> सामाजिक लोकतंत्र से क्या अर्थ निकलता है? इसका अर्थ होता है स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को एक जीवन-शैली के रूप में स्वीकार करना। सिद्धांतों की इस त्रयी में स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व को एक दूसरे से अलग-थलग नहीं माना जाना चाहिए। त्रयी के इन तत्त्वों को एक दूसरे से विच्छिन्न करने का मतलब है लोकतंत्र की मूल भावना की अवमानना करना ... समानता के बिना स्वतंत्रता कुछ लोगों की बपौती बन कर रह जाएगी। और स्वतंत्रता से रहित समानता व्यक्ति की पहलक़दमी का ख़ात्मा कर देगी। बंधुत्व के बिना, स्वतंत्रता और समानता जीवन का सहज अंग नहीं बन सकती।[2]

उद्योगीकरण : गाँधी के सोच के विपरीत नेहरू ग़रीबी मिटाने, जीवन-स्तर उठाने और वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ क़दम मिला कर चलने के लिए व्यापक रूप से उद्योगीकरण के पक्षधर थे। नेहरू के अनुसार भारत का ब्रिटेन के मुक़ाबले वैज्ञानिक और औद्योगिक रूप से पिछड़ा होना भी उसकी दासता के पीछे एक कारण था। वे कृषि के स्थान पर उद्योग को आर्थिक विकास के लिए वरीयता देना चाहते थे। उनके अनुसार कृषि उत्पादन एक आदिम और सांस्कृतिक दृष्टि से निम्न कार्य है जो न केवल मनुष्य को भाग्यवादी, रूढ़िवादी, संकीर्ण और पुरातनपंथी बना देता है, अपितु गाँव का सीमित वातावरण अज्ञान, आलस्य, अंधविश्वास पैदा करने का कार्य करता है। वे कुटीर उद्योगों को भी कुछ समय तक ही अपनाने के पक्षधर थे जब तक कि देश का पूर्ण उद्योगीकरण नहीं हो जाता। इसके लिए आधुनिक तकनीक और बड़ी मशीनरी को अपनाना उचित होगा।

---

[1] संविधान सभा (25 नवम्बर, 1949) में आम्बेडकर का भाषण, *कॉन्स्टीट्यूऐंट असेम्बली डिबेट्स,* खण्ड 12 : 979.

[2] वही.

भारत के उद्योगीकरण के मामले में नेहरू के उपरोक्त विचारों से आम्बेडकर दूर तक सहमत थे। गाँधी के विचारों से मतभेद व्यक्त करते हुए उन्होंने मशीनरी के प्रयोग को आधुनिक सभ्यता के विकास के लिए आवश्यक माना। उनके अनुसार कोई भी प्रजातंत्र मशीनरी के प्रयोग का विरोधी नहीं हो सकता क्योंकि मशीनरी के प्रयोग से मानवीय श्रम की बचत होती है, जिससे बचे हुए ख़ाली समय का उपयोग मनुष्य अर्थपूर्ण सांस्कृतिक जीवन जीने में कर सकता है। पहले के समाजों में यह सुविधा सिर्फ़ छोटे से उच्च वर्ग तक ही सीमित थी। अधिक और उन्नत मशीनरी के प्रयोग से यह सभी को उपलब्ध कराई जा सकती है।

नेहरू और आम्बेडकर, दोनों की दृष्टि में गाँधी के विपरीत ग्रामीण भारतीय समाज की आधुनिक सभ्यता से कोई संगति नहीं थी। अत: उसको भारतीयता के नाम पर महिमामण्डित करने की ज़रूरत नहीं थी। दोनों के विचारों में थोड़ा अंतर इस बात पर ज़रूर था कि जहाँ नेहरू के लिए गाँव वर्ग-विभेद, अज्ञान और पिछड़ेपन की निशानी थे, वहीं आम्बेडकर के लिए गाँव शोषण, दमन और बहिष्करण के क्षेत्र थे जहाँ रह कर अपनी जातिगत अस्मिता के बाहर आ पाना असम्भव था। उन्होंने तल्ख़ी से कहा था : 'गाँव को आख़िर स्थानीयता के नाबदान, ज़हालत, दिमाग़ी संकीर्णता और सामाजिक विषमता का गढ़ होने के अलावा और कहा भी क्या जा सकता है?'[3]

समाजवाद : एक आदर्श समाज की परिकल्पना के रूप में समाजवाद के लक्ष्य में नेहरू की आस्था आजीवन रही। उनके लिए समाजवाद मात्र एक आर्थिक विचारधारा या न्यायपूर्ण समाज व्यवस्था ही नहीं थी, अपितु एक पुन: निर्मित मनुष्य के आधार पर नयी सभ्यता का उदय था। इसमें उत्पादन योजनाबद्ध और आपसी सहयोग के आधार पर मानवीय ज़रूरतों को पूरा करने के उद्देश्य से किया जाता है, न कि अधिकतम लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से। यह वर्ग विहीन और प्रजातंत्रात्मक होना चाहिए जिससे प्रत्येक मनुष्य को उसकी प्रतिभा के पूर्ण विकास का अवसर मिल सके। यह तभी सम्भव है जब नागरिक के मौलिक अधिकार सुरक्षित हों। नेहरू का समाजवाद सोवियत यूनियन में विकसित समाजवाद से इस मायने में भिन्न था कि उन्होंने सर्वहारा के अधिनायकत्व और हिंसक क्रांति तथा पूँजीवाद को उखाड़ फेंकने के सिद्धांत का समर्थन नहीं किया। वे मिश्रित अर्थव्यवस्था के पक्षधर थे जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र की प्रमुख भूमिका थी। इसके पीछे उनके आर्थिक और राजनीतिक उद्देश्य थे। उनकी दृष्टि में केवल समाजवाद ही राष्ट्रीय स्वतंत्रता, राज्य की स्वायत्तता और प्रजातंत्र की रक्षा कर सकता है। उस समय की परिस्थितियों में सार्वजनिक क्षेत्र की प्रमुख भूमिका के औचित्य से इंकार नहीं किया जा सकता क्योंकि राज्य के पास ही इतने संसाधन और शक्ति थी कि भारी उद्योग लगाए जा सकें जो न केवल आर्थिक विकास को गति दे बल्कि अपनी आर्थिक ताक़त से निजी क्षेत्र की ताक़त को भी क़ाबू में रख सके जिससे उत्पादन का आधार समाज की ज़रूरत हो न कि मात्र कुछ का लाभ।

नेहरू की तरह आम्बेडकर भी सर्वहारा की तानाशाही के विरोधी होने के बावजूद समाजवादी व्यवस्था के पक्षधर थे। वे राज्य के नियंत्रण में ऐसी अर्थव्यवस्था स्थापित करना चाहते थे जिसमें सम्पत्ति का समान वितरण हो, कृषि पर राज्य का स्वामित्व हो, सामूहिक खेती की व्यवस्था हो और बीमा का राष्ट्रीयकरण हो। इसलिए उन्होंने राज्य-समाजवाद की वकालत की जिसके तहत वे राज्य के लिए समाजवाद की स्थापना को संवैधानिक रूप से बाध्यकारी बनाना चाहते थे। उनका मानना था कि यदि समाजवाद को बहुमत के भरोसे छोड़ दिया गया तो ब्राह्मणवादी और पूँजीवादी ताक़तें इस सपने को कभी साकार नहीं होने देंगी। वे राज्य-समाजवाद को बिना तानाशाही और संसदीय जनतंत्र

---

[3] वसंत मून : 62.

के साथ प्राप्त करना चाहते थे। इससे स्पष्ट है कि उनकी चिंता का केंद्र सम्पूर्ण जनता थी न कि केवल दलित। सम्पूर्ण मानवता के कल्याण का भाव उनमें निहित था।

सेकुलरवाद : नेहरू सेकुलर राज्य के ज़बरदस्त हिमायती थे। इसका अर्थ राज्य को धर्म से तटस्थ और परे रखना था। राज्य एक सार्वजनिक उपक्रम है और धर्म एक निजी। दोनों के बीच अलगाव ज़रूरी है। साथ ही नेहरू आध्यात्मिकता और धर्म के वैचारिक-संस्थागत आयामों के बीच अंतर करते थे। जहाँ संस्थागत धर्म के प्रति उनमें घोर विरोध था, वहीं आध्यात्मिकता के प्रति उनमें लगाव दृष्टिगोचर होता है, हालाँकि उन्होंने कभी उसे स्पष्ट रूप से व्याख्यायित करने का प्रयत्न नहीं किया। कभी इसका अर्थ उन्होंने नैतिकता के समानार्थी माना, तो कभी मनुष्य की नियति और जीवन के उद्देश्य खोजने/पाने के अर्थ में किया। उनके अनुसार यद्यपि आध्यात्मिकता ही धर्म के पीछे प्रेरक शक्ति है किंतु धर्म इन प्रश्नों के बारे में अंतिम उत्तर देने का प्रयास करता है जो अनुचित है। चूँकि भारत जैसे देश में जहाँ की संस्कृति धर्म पर आधारित है, राज्य और धर्म के बीच पूर्ण अलगाव व्यावहारिक नहीं है। इसलिए कई बार संविधान-प्रदत्त नागरिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए राज्य को धार्मिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करने का हक़ है, इसलिए अस्पृश्यता के विरुद्ध क़ानून बनाने, हिंदू कोड बिल और मण्डदरों का इंतज़ाम सुव्यवस्थित करने में राज्य के हस्तक्षेप का उन्होंने समर्थन किया। वे यह भी चाहते थे कि भारत के सभी नागरिकों के लिए समान आचार संहिता हो लेकिन इसके लिए वे मुसलमान समाज के तैयार होने तक इंतज़ार के पक्षधर थे।

आम्बेडकर का भी मानना था कि जगत और मनुष्य का व्यवहार मानवीय तर्क बुद्धि से समझा जा सकता है, और इसके लिए किसी दैवी सत्ता को स्वीकार करने की ज़रूरत नहीं है। ऐसा विश्वास मनुष्य के पिछड़ेपन की अवस्था का द्योतक है जब उसमें प्रकृति और समाज को समझने/बदलने की क्षमता नहीं थी। किसी परम शक्ति की ज़रूरत और उस पर निर्भरता मानवीय गरिमा के विपरीत और उसकी स्वतंत्रता से इंकार करना है। लेकिन धर्म के बारे में उनका विचार उभयअर्थी था। एक ओर जहाँ वे व्यक्तिगत ईश्वर और इलहाम में आस्था को अंधविश्वासों में गिनते थे, वहीं धर्म की समाजहितकारी भूमिका को भी स्वीकार करते थे। उनके अनुसार धर्म मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों के उन्नयन के लिए ज़रूरी है। धर्म प्रेम, सद्भाव, सेवा, सामाजिक एकता को बढ़ावा देता है, और बुराई तथा न्याय के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान करता है। सच्चे अर्थों में धर्म मनुष्य को आत्म सम्मान और ज़िम्मेदारी से परिपूर्ण करता है। यही विशेषताएँ न केवल अच्छे और ख़राब धर्म के बीच विभाजक रेखा बनाती हैं, अपितु किसी भी स्थापित धर्म के भीतर श्रेष्ठ तत्त्वों को बढ़ावा देने की कसौटी बन जाती हैं। अत: धर्मों में सुधार की गुंज़ाइश हमेशा बनी रहती है। इस दृष्टि से नैतिक शुभ की स्थापना केवल आधुनिक तर्कबुद्धि से सम्भव नहीं है। न केवल नैतिक शुभ को तर्कयुक्त होना चाहिए अपितु तर्क को भी नैतिकता के अंतर्गत कार्य करना चाहिए। इसलिए ऐसी मान्यता के साथ धर्म कर्मकाण्डी या मताग्रही नहीं हो सकता। इसी कारण हिंदू धर्म की मान्यताओं से आजीवन संघर्ष करने और लगभग तीस वर्ष तक विचार करने के बाद आम्बेडकर ने बौद्ध धर्म अपनाया। साथ ही उसमें समयोचित परिवर्तन भी सुझाए।

राष्ट्रवाद : नेहरू सच्चे देशभक्त और राष्ट्रवादी थे। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष के दौरान उनके अंदर भारतीय राष्ट्र की परिकल्पना ने जन्म लिया जिसे उन्होंने इतिहास के अपने अध्ययन द्वारा और पुष्ट किया। आधुनिक अर्थ में जिसे राष्ट्र कहा जाता है वह आधुनिक परिघटना है। उन्हें पता था कि इतिहास में पहले कभी केंद्रीय राज्यसत्ता के न रहने के कारण भारत कभी एक नहीं रह पाया जिस कारण वह बार-बार बाहरी आक्रमणकारियों के आखेट का आसान निशाना बनता रहा।

उनकी मान्यता थी भारतीय संविधान ने एक सशक्त राष्ट्र की नींव रखी है जिसमें स्वायत्तता की क्षेत्रीय आकांक्षाओं का मज़बूत केंद्रीय सत्ता के साथ अच्छा समन्वय है। उद्योगीकरण द्वारा सारे देश को आर्थिक परस्पर निर्भरता के संजाल में बाँधने में मदद मिलेगी और आर्थिक नियोजन द्वारा इस बात की गारंटी रहेगी कि सभी क्षेत्रों को आर्थिक विकास के फल समान रूप से प्राप्त हो सके। उन्हें आशा थी कि यात्रा और संचार की बढ़ती सुविधाएँ, हमारे विश्वविद्यालय, सार्वजनिक उपक्रम और प्रदेशों की सरकारें मिलकर भारतीय राष्ट्र की नयी तस्वीर बनाएँगे। वे पुनरुत्थानवादी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और धार्मिक राष्ट्रवाद के घोर विरोधी थे। इसीलिए उन्होंने द्वि-राष्ट्र के सिद्धांत का कभी समर्थन नहीं किया। उनका राष्ट्रवाद संकीर्णता से परे था, वह राष्ट्रों की सरहदों के पार सार्वदेशिकता से सम्पन्न विश्ववाद को छूता था। अपनी बेटी इंदिरा को चवालीसवें पत्र में वे लिखते हैं :

> हमें पूरी दुनिया को सामने रख कर सोचना चाहिए। अगर इस दुनिया के किसी छोटे से हिस्से में , जिसे हम भले ही अपनी मातृभूमि कहते हों, हमारा जीवन का बड़ा हिस्सा गुज़रा है तो हम बाक़ी दुनिया के साथ क़दमताल नहीं कर पाएँगे।[4]

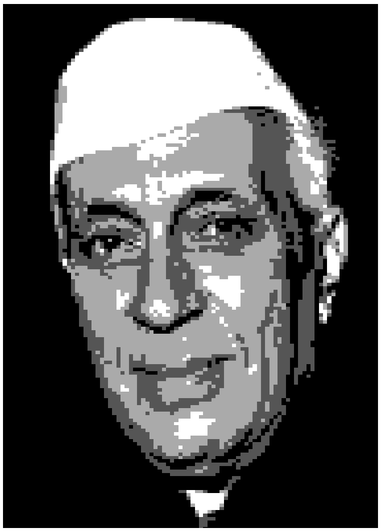
इसीलिए उन्होंने सभी देशों के उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलनों का समर्थन किया और उनकी मुक्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। अफ़्रीकी नैशनल कांग्रेस का समर्थन इसका ज्वलंत उदाहरण है।

आम्बेडकर की देशभक्ति पर उन गाँधी तक को संदेह नहीं था जिनका विरोध उन्होंने आजीवन किया। लेकिन आम्बेडकर की राष्ट्रवाद की परिकल्पना कांग्रेस के नेताओं से भिन्न थी जिनके हाथ में स्वतंत्रता संग्राम की बागडोर थी। यह सच है कि आम्बेडकर ने कांग्रेस द्वारा ब्रिटिश हुक़ूमत के ख़िलाफ़ चलाए गये आंदोलनों में हिस्सा नहीं लिया— यहाँ तक कि 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन का भी विरोध किया। लेकिन इसके पीछे उनकी दृष्टि में भारतीय राष्ट्रवाद का उच्च वर्गीय/जातिगत स्वरूप था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा भारत के आर्थिक शोषण से आम्बेडकर भली भाँति परिचित थे और भारत के स्वतंत्र होने से उनका विरोध नहीं था। लेकिन वे ऐसे किसी स्वत्रंत भारत के पक्षधर नहीं थे जिसमें अनुसूचित जातियों को उनकी संख्या के अनुरूप प्रतिनिधित्व न मिले। आम्बेडकर की दृष्टि में अंग्रेज शासन से जिस स्वतंत्रता की वकालत कांग्रेसी राष्ट्रवादी कर रहे थे उससे शूद्रों/अछूतों को अपनी गुलामी और दरिद्रता से मुक्ति नहीं मिलने वाली थी। यदि हम राष्ट्र को उच्च शासक वर्गों तक सीमित न माने तो आम्बेडकर की माँग को राष्ट्रविरोधी घोषित नहीं किया जा सकता। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि परतंत्रता का एक आंतरिक पहलू भी था जिसकी ओर आम्बेडकर के विरोध ने ध्यान दिलाया। राष्ट्रवाद और मातृभूमि की अंधभक्ति में अंतर है और एक सशक्त राष्ट्र के निर्माण के लिए बाहरी और भीतरी, दोनों प्रकार की गुलामी और शोषण से मुक्ति ज़रूरी है। सदियों से शोषित, दमित, बहिष्कृत दलित वर्गों के पक्ष में आवाज़ उठाकर आम्बेडकर ने भारतीय राष्ट्रवाद से सामाजिक आधार को अधिक व्यापक और मज़बूत बनाने का कार्य किया जिसका गवाह स्वतंत्र भारत का 67 सालों का इतिहास है।

इतिहास दृष्टि : नेहरू और आम्बेडकर, दोनों ही प्राचीन भारतीय इतिहास में रुचि रखते थे, किंतु दोनों के दृष्टिकोण भिन्न था। विशेष रूप से बौद्ध धर्म के भारत में प्रचार-प्रसार और अवसान के बारे में। नेहरू की दृष्टि में (क) मौर्य साम्राज्य के आंतरिक सांस्कृतिक टकराव से जो नया समाज उदय हो रहा था, बुद्ध का सार्वभौमिक सिद्धांत उसके लिए ज़्यादा उपयोगी और प्रासंगिक था, (ख) इससे नयी शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ जिसने भारत के भीतर और बाहर व्यापार को बढ़ावा दिया।

---

[4] जवाहरलाल नेहरू (1939) : पत्र संख्या 44.



आपस में जुड़ी भिन्नताओं वाली भारत की छवि ने उन्हें भाषा, धर्म आदि पर आधारित किसी एक पहचान को थोपने के प्रयासों का निरंतर विरोध करने को बाध्य किया। फिर भी उन्हें परम्परा-विरोधी नहीं कहा जा सकता क्योंकि वे सम्राट अशोक और कौटिल्य से प्रभावित थे और इसी कारण भारतीय राज्य की मुहर सारनाथ के शेरों वाली और राष्ट्रीय ध्वज में धर्मचक्र प्रवर्तन वाला चक्र स्वीकारने में उनकी सहमति थी।

जबकि आम्बेडकर ने आर्यों के पतनशील सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन के संदर्भ में बौद्ध नैतिकता की श्रेष्ठता पर ज़्यादा ज़ोर दिया। उनकी दृष्टि में गौतम बुद्ध द्वारा जाति, ग़ैरबराबरी और यज्ञ ऐसे ब्राह्मणवादी कर्मकांडों के विरोध में ही उनकी सफलता का राज छिपा है। ऐसा नहीं है कि नेहरू ने बुद्ध के नैतिक विचारों की सार्वभौमिकता और श्रेष्ठता से इंकार किया हो, लेकिन उसके प्रचार-प्रसार में राज्य सत्ता के सहयोग को भी महत्त्वपूर्ण माना जबकि आम्बेडकर ने राजनीतिक-आर्थिक कारकों की ओर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया। प्रश्न उठता है कि जब बौद्ध धर्म और नैतिकता हिंदू धर्म से इतनी श्रेष्ठ थी तो भारत में बौद्ध धर्म का पतन कैसे हुआ जबकि सुदूर देशों में पनपने में उसे सफलता मिली ? यह भारतीय इतिहास के सबसे जटिल प्रश्नों में से एक है जिसका उत्तर नेहरू और आम्बेडकर ने अलग-अलग दिया।

बौद्ध धर्म के भारत में अवसान के नेहरू ने कई कारण गिनाए। वे इस प्रक्रिया को बौद्ध धर्म के पतन की दृष्टि से नहीं, बल्कि हिंदू धर्म द्वारा उसे अपने में समावेशित कर लेने की नज़र से देखते हैं। इसके पीछे वे कई अन्य कारणों को भी गिनाते हैं लेकिन मुख्य रूप से अहिंसा पर ज़रूरत से ज़्यादा ज़ोर देने के कारण चौथी शताब्दी में विदेशी आक्रांताओं से लड़ने के लिए उसकी शक्तिहीनता ने ब्राह्मणवाद को पुनः स्थापित होने का मौक़ा दिया। किंतु आम्बेडकर की दृष्टि में बौद्ध धर्म के पतन का मूल कारण ब्राह्मणों द्वारा उनका दमन था। ब्राह्मणों ने वर्चस्व के लिए न केवल शास्त्रों का उपयोग किया अपितु अबौद्ध राजाओं द्वारा बौद्धों का दमन करवाया। इस कार्य में मुसलमान आक्रांताओं ने भी योगदान किया किंतु आम्बेडकर की दृष्टि में हिंदू आक्रमण ज़्यादा दुर्दांत था। इसीलिए वे बौद्ध धर्म के उदय को क्रांति और उसके ब्राह्मणवाद द्वारा अंत को प्रतिक्रांति की संज्ञा देते हैं।

भारतीय संस्कृति : भारतीय इतिहास के उपरोक्त महत्त्वपूर्ण अध्याय के प्रति दोनों विचारकों की दृष्टि में मतांतर के पीछे भारतीय संस्कृति के बारे में उनके मतभेद भी उजागर होते हैं। नेहरू की पुस्तक *द डिस्कवरी ऑफ़ इण्डिया* की आधारभूत मान्यता 'विभिन्नता में एकता' और संश्लेषण की क्षमता है। जबकि आम्बेडकर की पुस्तक *रेवोल्यूशन ऐंड काउंटर रेवोल्यूशन इन एंशिएंट इण्डिया* में सांस्कृतिक निरंतरता के प्रत्यय पर ही सवाल उठाया गया है। आम्बेडकर

ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा है :

> सबसे पहले तो हमें यह तथ्य स्वीकार करना होगा कि भारत में साझी संस्कृति जैसी कोई चीज़ ही नहीं रही है। ऐतिहासिक रूप से यहाँ तीन भारत रहे हैं—ब्राह्मण भारत, बौद्ध भारत और हिंदू भारत। और, इन तीनों की अपनी विशिष्ट संस्कृति रही है। हमें दूसरी बात यह स्वीकार करनी चाहिए कि मुसलमानों के आक्रमण से पहले का भारतीय इतिहास ब्राह्मण धर्म और बौद्ध धर्म के नैतिक द्वंद्व का इतिहास रहा है।[5]

अपनी पुस्तक में नेहरू ने भारतीय संस्कृति की जो तस्वीर खींची है, वह किसी शुद्ध हिंदू संस्कृति का बखान नहीं है। उनकी दृष्टि में यह सदियों से होते आये सांस्कृतिक मिश्रण, स्वीकार्य और अनुकूलन का परिणाम है जिसमें एक के ऊपर दूसरी तहें हैं लेकिन जो पहली वाली तहों को न पूरी तरह छिपाती है और न विनष्ट करती है। इस परतदार संस्कृति संरचना को हम भारतीय संस्कृति की विकेंद्रित धारणा कह सकते हैं। अपनी आत्मकथा में उन्होंने लिखा है कि जिस तरह भारत के अतीत में कोई एक राजधानी नहीं रही उसी तरह भारतीय संस्कृति सारे देश में इस तरह फैली हुई थी कि किसी एक भाग को उसका केंद्रीय हृदय कहना उचित नहीं होगा। संस्कृति की इसी समझ के चलते उन्हें एक नयी परत के रूप में अंग्रेज़ी प्रभाव को ग्रहण करने में कभी दिक़्क़त नहीं हुई और सड़ी-गली सांस्कृतिक मान्यताओं को हस्तक्षेप द्वारा बदलने में कोई आपत्ति भी नहीं थी। आपस में जुड़ी भिन्नताओं वाली भारत की छवि ने उन्हें भाषा, धर्म आदि पर आधारित किसी एक पहचान को थोपने के प्रयासों का निरंतर विरोध करने को बाध्य किया। फिर भी उन्हें परम्परा-विरोधी नहीं कहा जा सकता क्योंकि वे सम्राट अशोक और कौटिल्य से प्रभावित थे और इसी कारण भारतीय राज्य की मुहर सारनाथ के शेरों वाली और राष्ट्रीय ध्वज में धर्मचक्र प्रवर्तन वाला चक्र स्वीकारने में उनकी सहमति थी। बौद्ध धर्म में दीक्षा लेकर आम्बेडकर ने तो भारतीय सांस्कृतिक परम्परा की एक विशेष धारा पर अपनी मुहर ही लगा दी।

वैज्ञानिक दृष्टि : नेहरू की नज़र में इसका अर्थ विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास नहीं अपितु जीवन और जगत के प्रति सोच में तार्किकता और अनुभवपरकता का विकास है। लगभग एक हज़ार साल से भारत के पतन के पीछे उसके लोगों की रूढ़िवादी, रहस्यवादी, तथ्य और तर्क से परे काल्पनिक सोच ही कारण है। अब समय आ गया है कि युरोप की तरह भारतीय भी वैज्ञानिक दृष्टि को अपनाए। वैज्ञानिकता से नेहरू का मतलब यह है कि अंध आस्था के स्थान पर केवल तथ्यों द्वारा समर्थित ज्ञान को ही स्वीकारना, नये साक्ष्यों के आधार पर उसमें परिवर्तन करना, अंतिम सच के स्थान पर बराबर जाँच-परख के दरवाज़े खुले रखना ही है। लेकिन नेहरू विज्ञान की सीमाओं से भी परिचित थे और प्रत्यक्षवादियों की भूल को दोहराना नहीं चाहते थे। उनका मानना था कि जीवन के कई क्षेत्रों में विज्ञान की भूमिका सीमित है। विज्ञान यह भी बताने में असमर्थ है कि उसके द्वारा अर्जित ज्ञान का उपयोग कैसे किया जाए। लेकिन इन सीमाओं के होते हुए भी नेहरू का कहना था कि प्राकृतिक विज्ञानों की भूमिका सर्वोपरि है, समाज के अध्ययन में भी इसका पूरा दख़ल होना चाहिए और आत्मा, परमात्मा ऐसे प्रत्ययों की वास्तविकता जाँचने में इसे अपनी नकारात्मक भूमिका निभानी चाहिए।

आम्बेडकर भी नेहरू की इस बात से सहमत थे कि भारतीय समाज का बहुत बड़ा तबक़ा रूढ़िवादी अंधविश्वासों से जकड़ा है जिससे चालाक लोगों को अपना न्यस्त स्वार्थ सिद्ध करने का पूरा मौक़ा मिलता है। आम्बेडकर का दृष्टिकोण प्रकृतिवाद के बहुत नज़दीक है। उनका मानना था कि हर घटना के पीछे कोई कारण होता है जो प्रकृति के नियम या मानवीय कृतत्व का परिणाम होता

---

[5] बी.आर. आम्बेडकर (1987) : 275.

है। हो सकता है कि आज हम उस कारण को ठीक से न समझते हों किंतु मानवीय बुद्धि से एक दिन अवश्य समझ लेंगे। इससे तर्क और अनुभव के आधार पर वे किसी अति-प्राकृतिक तत्त्व जैसे आत्मा, परमात्मा, कर्मफल, पुनर्जन्म की सत्यता से इंकार करते हैं और यह भी बताते हैं कि इन पर विश्वास करने से मनुष्य अपना आत्मविश्वास, साहस और स्वतंत्रता खो देता है। विज्ञान की सीमाओं से वे नेहरू के मुक़ाबले ज़्यादा चेतनाशील थे। तभी तो धर्म की ज़रूरत को बड़ी शिद्दत से महसूस करते हैं और बौद्ध धर्म अपनाते हैं। अन्य धर्मों के मुक़ाबले बौद्ध धर्म अपनाने के पीछे भी उसमें निहित तर्कशीलता और अनुभवगम्यता ही है। जाति व्यवस्था का विरोध वे उसकी अवैज्ञानिकता के आधार पर भी करते हैं। मानवी मुक्ति के लिए वे किसी अवतार या दैवी हस्तक्षेप पर विश्वास नहीं करते।

जातिप्रथा और उसका उन्मूलन : वर्ण और जाति की उत्पत्ति के बारे में नेहरू पाश्चात्य विद्वानों के मत से ही सहमत दिखाई देते हैं कि आर्यों और दस्युओं के भीषण संघर्ष में ही वर्णवाद उदित हुआ। बाद में आर्थिक समुदायों और श्रेणियों के विस्तार से वर्णवाद और मज़बूत हुआ। जातिवाद उसी का विकृत स्वरूप है। अन्य सभ्यताओं में भी वर्णवाद का अंशत: समर्थन तो मिलता है किंतु हिंदुओं जैसा जटिल-शोषक जातिवाद संसार में अन्यत्र नहीं है। इससे मुक्ति, नेहरू के विचार में, धीरे-धीरे उद्योगीकरण, आर्थिक विकास और समाजवाद की स्थापना के साथ ही सम्भव है। लेकिन समीपवर्ती दृष्टि से निम्न जातियों के आरक्षण का समर्थन भी उन्होंने किया।

आम्बेडकर का तो सारा जीवन ही शूद्र और अछूत जातियों के उत्थान के लिए समर्पित था। इसके लिए उन्होंने न केवल जातिप्रथा की उत्पत्ति और उसके विनाश के बारे में गहराई से विचार किया अपितु अछूतों में चेतना फैलाने, उन्हें संगठित करने, आंदोलन करने, सरकारों से विभिन्न वैधानिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए संघर्ष भी किया। ऐसा लगता है कि प्रारम्भ में उनका संघर्ष हिंदू धर्म के अंतर्गत ही अछूतों को एक सम्मानजनक स्थान दिलाने के लिए था, किंतु धीरे-धीरे इससे उनका मोहभंग हो गया और इसीलिए अंत में उन्होंने हिंदू धर्म छोड़ कर बौद्ध धर्म अपनाया। इस विषय पर उनके कांग्रेस और गाँधी जी से काफ़ी मतभेद थे, किंतु उसकी चर्चा यहाँ अवांतर होगी। यहाँ हम उनके विचारों की कतिपय विशेषताओं की ही चर्चा करेंगे।

1948 में प्रकाशित अपनी पुस्तक *द अनटचेबिल्स* में आम्बेडकर ने यह स्थापित किया कि प्रारम्भ में अछूत बौद्ध धर्म के अनुयायी थे जो बौद्ध धर्म और ब्राह्मण धर्म के संघर्ष में बौद्ध धर्म की पराजय के बाद अछूत हो गये। उनका पक्का विश्वास था कि केवल अछूत ही अछूतों को नेतृत्व प्रदान कर सकते हैं। इसीलिए उन्होंने ऊँची जातियों के किसी संगठन का समर्थन लेने का प्रयत्न नहीं किया। यद्यपि अपनी गतिविधियों में ऊँची जाति के सदस्यों का स्वागत किया। स्वतंत्रता से पूर्व और उसके पश्चात्, अछूतों के हितों की रक्षा के लिए क़ानूनी लड़ाई को वरीयता प्रदान की और उसके लिए भारतीय संविधान में व्यवस्थाएँ भी कराईं। समस्या के मनोवैज्ञानिक पहलू को नज़रअंदाज़ न करते हुए उन्होंने अछूतों में आत्मसम्मान और आत्मविश्वास जगाने पर भी बहुत ज़ोर दिया। इसके लिए उन्होंने अछूतों द्वारा किये जा रहे परम्परागत कार्यों जैसे मरे जानवरों को उठाना आदि का निषेध किया। तो दूसरी ओर उन्हें उच्चतर स्तर तक शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित भी किया। उनके अनुसार अछूतों को एक अलग, अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में देखा जाना चाहिए और जिनकी विशेष ज़रूरतों पर ध्यान दिलाने के लिए अछूतों द्वारा ही उनका सरकार में हर स्तर पर प्रतिनिधित्व होना चाहिए। उनके प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही भारतीय संविधान में अस्पृश्यता को क़ानूनी रूप से अवैध घोषित किया गया। साथ ही अनुसूचित जातियों के लिए विभिन्न स्तरों पर आरक्षण का प्रावधान भी किया गया। आम्बेडकर का उद्देश्य महज़ अस्पृश्यता से निपटना नहीं था, वे तो जाति प्रथा का समूल नाश चाहते थे। उन्होंने समाज को चार वर्णों में विभाजित करने वाली वर्ण व्यवस्था और उसके अंतर्गत चलने

वाली जाति व्यवस्था, दोनों का विरोध किया और अपनी पुस्तक *एनिहिलेशन ऑफ़ कास्ट* में उनके अंत के उपाय सुझाए।

वैधानिक उपायों के लिए संघर्ष और सफलता के बावजूद आम्बेडकर उनकी सीमाओं से भी परिचित थे। उनके अनुसार चूँकि हिंदू धर्म सामाजिक स्तर पर ग़ैर-बराबरी को औचित्य प्रदान करता है। अत: उसे छोड़े बिना दलितों को बराबरी का हक़ व सम्मान नहीं मिल सकता। इसीलिए उन्होंने लगभग तीस वर्षों तक सभी धर्मों का गहरा तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात्, अपने सहयोगियों के साथ 1956 में बौद्ध धर्म अपना लिया क्योंकि उनकी दृष्टि में बौद्ध धर्म जाति विरोधी और नैतिकता प्रधान होने के कारण सर्वश्रेष्ठ है। इसकी विस्तृत चर्चा उन्होंने अपनी पुस्तक *बुद्धा ऐंड हिज़ धम्मा* में की है।

गुटनिरपेक्षता : गुटनिरपेक्षता का आदर्श आज चाहे कितना ही धूमिल क्यों न पड़ गया हो, नेहरू के विचारों की चर्चा उसके बिना अधूरी ही रहेगी। इसे अपनाने के पीछे उनकी मान्यता थी कि प्रबुद्ध पूँजीवाद उदार साम्यवाद के साथ दोस्ताना प्रतिस्पर्धा में रह सकता है। उनका शांतिपूर्ण सहअस्तित्व विश्व शांति के लिए ज़रूरी है। अत: दोनों शक्ति-केंद्रों से बाहर रहकर भारत न केवल अपने हितों की रक्षा बल्कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इसे औचित्य प्रदान करने के वास्ते उन्होंने तीन कारण बताए। प्रथम, यह भारत की स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति और उसे सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक है। द्वितीय, भिन्न-भिन्न विचार रखने वाले भारतीयों को एक सूत्र में बाँधे रखने का यह एक सुरक्षित उपाय है। तृतीय, किसी एक शक्ति केंद्र के साथ जुड़कर भारत न तो बड़ी शक्तियों के बीच मध्यस्थता कर सकता है, न महत्त्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर नयी दृष्टि से विचार समर्थन जुटा सकता है और न तीसरी दुनिया के देशों के पक्ष में बोल सकता है। अपने समय में ये विचार बड़े ही सार्थक जान पड़ते हैं। इन्होंने नेहरू और भारत को एक वैश्विक पहचान दिलाने में मदद की।

आम्बेडकर कांग्रेस की इस गुटनिरपेक्ष नीति से सहमत नहीं थे और 1951 में मंत्री पद से इस्तीफ़ा देते समय इसका उल्लेख भी किया था। वे कम्युनिस्ट देशों के मुक़ाबले पश्चिमी देशों से संबंध रखने के पक्षधर थे।

II

नेहरू और आम्बेडकर के विचारों में समानताओं और भिन्नताओं के उपरोक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट ही है कि जहाँ उनके बीच समानता का व्यापक क्षेत्र है वहीं भिन्नता भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। लोकतंत्र, उद्योगीकरण और समाजवाद ऐसे मुद्दों पर उनमें दूर तक सहमति के पीछे दो मान्यताएँ कार्यरत दिखाई देती हैं। पहली, ऐतिहासिक दृष्टि से भारत के लिए अपनी स्वायत्तता बनाए रखने के लिए और अपनी आर्थिक-सामाजिक- राजनीतिक समस्याओं को हल करने के उद्देश्य से आधुनिकीकरण को अपनाना आवश्यक है। दूसरी, आधुनिक पश्चिमी सभ्यता पहले की सभ्यताओं से श्रेष्ठ है क्योंकि यह मनुष्य की स्वतंत्रता की चाह का परिणाम है जिसने प्रकृति को वश में करने, भौतिक अभावों को दूर करने, सामाजिक बाधाओं को दूर करने और मनुष्य की वैयक्तिकता स्थापित करने में सफलता पाई है। यद्यपि इसमें कुछ कमियाँ भी हैं लेकिन यह उपलब्ध अन्य विकल्पों से श्रेष्ठ है। इसमें अपनी कमज़ोरियों को पहचानने और उन्हें ठीक करने की क्षमता है। आधुनिकता का मतलब केवल उद्योगीकरण नहीं है— यह एक तार्किक, मानववादी, सेकुलर और वैज्ञानिक विश्वदृष्टि भी है। अत: भारत के लिए आधुनिकीकरण की न केवल ज़रूरत है अपितु यह वांछनीय भी है। यह भारत का युगधर्म है।

आधुनिकीकरण को श्रेष्ठतम युगधर्म स्वीकार्य करने का एक अर्थ यह भी था कि दोनों, नेहरू और आम्बेडकर के लिए हिंदू पुनरुत्थानवाद की कोई प्रासंगिकता नहीं थी। वेद-उपनिषद की दुहाई

देने वालों से उनका स्पष्ट मतभेद था। लेकिन ज़्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि दोनों का भारत के भविष्य का सपना गाँधी के सपने से भी भिन्न था। अपने में स्वावलम्बी जिस ग्राम स्वराज की बात गाँधी करते थे उसे नेहरू और आम्बेडकर अज्ञान और पिछड़ेपन की निशानी मानते थे। कई तरह से गाँधी आधुनिक सभ्यता के आलोचक थे और भारी मशीनों पर आधारित उद्योगीकरण के विरोधी जबकि नेहरू और आम्बेडकर, दोनों की दृष्टि में मशीनों पर आधारित उद्योगीकरण का कोई विकल्प नहीं था। गाँधी विकेंद्रीकरण के पक्षधर थे जबकि ये दोनों मज़बूत केंद्रीय सत्ता के पक्षपाती थे।

नेहरू पर सोवियत यूनियन और फ़ेबियन सोशलिस्टों का और आम्बेडकर पर अमरीकी दार्शनिक जान डुवी और ब्रिटिश राजनीतिशास्त्री हेराल्ड लास्की का प्रभाव था। यद्यपि दोनों ही पूँजीवाद के विरोधी और समाजवाद के समर्थक थे किंतु वे समाजवाद की स्थापना के लिए सोवियत ढंग की तानाशाही के विरोधी थे। इस तरह भारत के लिए आधुनिकीकरण का उनका मॉडल न अमेरिकी ढंग का पूँजीवाद था और न सोवियत रूस की तरह साम्यवादी। वे पश्चिम की अंधी नक़ल के पक्षधर नहीं थे।

भारत को एक आधुनिक ढंग का संविधान देने में नेहरू और आम्बेडकर की भूमिका पर किसी को संदेह नहीं है लेकिन हिंदू व्यक्तिगत क़ानूनों में संशोधन करने में उनकी संयुक्त भूमिका के बारे में लोगों में कम जानकारी है। क़ानून मंत्री के रूप में आम्बेडकर ने जिस हिंदू कोड बिल का मसविदा तैयार किया था वह नारी सशक्तीकरण की दृष्टि से बड़ा क्रांतिकारी था। उसमें स्त्रियों को व्यापक अधिकार दिये गये थे जिसके विरोध में हिंदू समाज की प्रतिगामी शक्तियाँ एकजुट होकर विरोध में खड़ी हो गयी थीं। इसके अंतर्गत पहली बार विधवा और पुत्री को सम्पत्ति में पुत्र के बराबर अधिकार, औरतों को क्रूर एवं लापरवाह पति से तलाक़ का अधिकार, एक पत्नी होते हुए पुरुष को दूसरी पत्नी से वंचित किया गया, भिन्न जाति के पुरुष और स्त्री को हिंदू क़ानून के अंतर्गत विवाह का अधिकार और हिंदू पति-पत्नी को दूसरी जाति के बच्चे को गोद लेने का अधिकार दिया गया था। कांग्रेस के अंदर का रूढ़िवादी तबक़ा, यहाँ तक कि राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद भी इसे स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। इस विरोध और आने वाले चुनाव को देखते हुए नेहरू ने उस समय बिल को वापस ले लिया जिसके विरोध में आम्बेडकर ने मंत्रिमण्डल से त्यागपत्र दे दिया। लेकिन बाद में नेहरू ने यही बिल टुकड़ों-टुकड़ों में संसद से पारित करवाया। आम्बेडकर की मृत्यु पर संसद में बोलते हुए नेहरू ने कहा था कि उन्हें न केवल 'हिंदू समाज की दमनकारी प्रथाओं के विद्रोही-व्यक्तित्व के रूप में देखा जाएगा' बल्कि

> उन्हें हिंदू क़ानून में सुधार करने और इसके लिए अथक प्रयत्न करने के लिए भी याद किया जाएगा। मुझे इस बात की ख़ुशी है कि भले ही यह सुधार उनके इस विराट दस्तावेज़ की शक़्ल में नुमाया न होकर टुकड़ों-टुकड़ों में हासिल हुआ हो लेकिन सुधार का यह सिलसिला बहुत हद तक उनके सामने ही पूरा हो गया था।[6]

मतभेद की दृष्टि से, नेहरू और आम्बेडकर में स्वतंत्रता से पूर्व राष्ट्रवाद को लेकर विचारों में अंतर दिखाई देता है। जहाँ नेहरू के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लड़ कर भारत को स्वतंत्रता दिलाना पहली प्राथमिकता थी वहीं आम्बेडकर के लिए जातिवादी हिंदू समाज के उत्पीड़न से दलितों की मुक्ति का सवाल पहले नम्बर पर था। स्वतंत्रता के बाद भी, संविधान द्वारा अस्पृश्यता को ग़ैरक़ानूनी घोषित कर दिये जाने और दलितों के पक्ष में आरक्षण की घोषणा के बाद भी आम्बेडकर के लिए दलित उत्थान का प्रश्न सर्वोपरि बना रहा जिसका परिणाम उनके द्वारा बौद्ध धर्म के स्वीकार के रूप में सामने आया जबकि नेहरू इसका दूरगामी हल शनैः शनैः उद्योगीकरण जनित आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में ही देखते हैं। महत्त्वपूर्ण होते हुए भी यह उनकी प्राथमिकता नहीं रही।

---

[6] रामचंद्र गुहा (2004), देखें, http://ramchandraguha.in/archives/reforming-the-hindus-html.

एक बड़ा और महत्त्वपूर्ण अंतर दोनों के बीच धर्म की भूमिका को लेकर है। वैज्ञानिक दृष्टि का समर्थन करते हुए दोनों ही विज्ञान की सीमाओं से भी परिचित हैं। दोनों ही इस कमी को नैतिकता से दूर करना चाहते हैं, किंतु आम्बेडकर जहाँ धर्म को सामाजिक नैतिकता के स्रोत के रूप में स्वीकार करते हैं वहीं नेहरू संस्थागत धर्मों की इस भूमिका को पूरी तरह नकार देते हैं। नेहरू एक धुँधली सी आध्यात्मिकता की बात तो करते हैं किंतु उसे स्पष्ट नहीं करते जबकि आम्बेडकर बौद्ध धर्म को न केवल स्वीकार करते हैं वरन् उसमें युगानुरूप परिवर्तन के सुझाव भी देते हैं।

इसके अलावा भी कई मुद्दों पर नेहरू और आम्बेडकर के विचारों में अंतर दिखाई देता है। भारत-पाकिस्तान बँटवारा, काश्मीर का विलय, गुटनिरपेक्षता और भाषा के आधार पर राज्यों की पुनर्रचना ऐसे ही मतभेद के विषय हैं। आम्बेडकर बँटवारे के प्रारम्भ से ही पक्षधर थे। वे काश्मीर का भी बँटवारा चाहते थे जिसके अंतर्गत हिंदू और बौद्ध बहुल हिस्से भारत के साथ और मुस्लिम बहुल हिस्सा पाकिस्तान को दिया जाना उचित समझते थे। इसके पीछे वे अपनी पुस्तक *पाकिस्तान ऑर पार्टीशन ऑफ़ इण्डिया* में तर्क देते हुए बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहते हैं :

> इस्लाम जिस भ्रातृत्व की चर्चा करता है, वह मनुष्य का सार्वभौम भ्रातृत्व नहीं है। यह तो केवल मुसलमानों के लिए ही है। ग़ैर-मुसलमानों के लिए उसमें केवल तिरस्कार और शत्रुता के अलावा कुछ नहीं है। मुसलमानों की निष्ठा केवल एक ऐसे राष्ट्र के साथ होती है जिसका शासन किसी मुसलमान के हाथ में हो। जिस धरती पर मुसलमान का शासन नहीं है, वह उसके लिए दुश्मन है। मुसलमान उस देश के साथ जुड़ाव नहीं रखता जहाँ वह रहता है, बल्कि वह उस धर्म के साथ जुड़ाव रखता है जिसे वह मानता है।[7]

अपनी-अपनी धार्मिक पहचानों को लेकर हो रहे वर्तमान हिंसक संघर्ष के संदर्भ में आम्बेडकर के विचार सामयिक जान पड़ते हैं।

भारतीय संस्कृति और परम्परा के बारे में दोनों के विचारों में साम्य और अंतर दोनों ही दिखाई देते हैं। सुनहरे अतीत में किसी स्वर्णपात्र से ढँकी शुद्ध महान् भारतीय संस्कृति की अवधारणा दोनों को स्वीकार्य नहीं। किंतु जहाँ नेहरू बाहरी प्रभावों को परत-दर-परत आत्मसात् करने की विशेषता पर ज़ोर देते हैं वहीं आम्बेडकर ब्राह्मणवाद, बौद्ध धर्म और हिंदू धर्म की ऐतिहासिक टकराहटों पर हमारा ध्यान केंद्रित करते हैं। भारतीयता के प्रति दोनों का लगाव है किंतु यह भविष्योन्मुखी ज़्यादा है भूतोन्मुखी कम। काफ़ी सोच विचार के बाद आम्बेडकर तो बौद्ध परम्परा से जुड़ना चाहते हैं किंतु नेहरू में ऐसा कोई प्रयत्न दिखाई नहीं देता। दोनों ही आधुनिक पश्चिम की श्रेष्ठता से प्रभावित हैं, आम्बेडकर कुछ कम, नेहरू कुछ ज़्यादा। इसका असर उनके भारतीय आधुनिकता के मॉडलों में देखा जा सकता है।

III

भारतीय आधुनिकता के दोनों पहरुओं के अवदानों का जब हम मूल्यांकन करने बैठते हैं तो एक बात बड़ी साफ़ उभर कर आती है कि ज्ञानोदय के आदर्श— स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा ही नेहरू और आम्बेडकर के समाज-निर्माण की वैचारिकी के पीछे है। इसका प्रमाण दोनों की संसदीय लोकतंत्र में गहरी आस्था और भारत के लिए एक आधुनिक संविधान गढ़ने और स्थापित करने में पूरी तरह प्रतिबद्ध होना है। भारत की स्वतंत्रता के समय चर्चिल सहित कई पर्यवेक्षकों का मत था कि भारत बिखर जाएगा, क्योंकि जाति, धर्म, भाषा आदि के आधार पर बँटा समाज अपने अतीत की भाँति एक केंद्रीय राज्य के अंतर्गत रहने में असमर्थ होगा। स्वतंत्रता के 67 वर्ष बाद यदि हम गर्व कर सकते हैं कि उक्त भविष्यवाणी झूठी साबित हुई तो इसके पीछे नेहरू और आम्बेडकर का योगदान सबसे

---

[7] एल.एस. राठौर द्वारा व्यक्तिगत रूप से प्रकाशित पुस्तिका *डॉ. आम्बेडकर : हिज़ वर्क्स ऐंड की कंसेप्ट्स* में उद्‌धृत.



'इस्लाम जिस भ्रातृत्व की चर्चा करता है, वह मनुष्य का सार्वभौम भ्रातृत्व नहीं है। यह तो केवल मुसलमानों के लिए ही है। ग़ैर-मुसलमानों लिए उसमें केवल तिरस्कार और शत्रुता के अलावा कुछ नहीं है। मुसलमानों की निष्ठा केवल एक ऐसे राष्ट्र के साथ होती है जिसका शासन किसी मुसलमान के हाथ में हो। जिस धरती पर मुसलमान का शासन नहीं है, वह उसके लिए दुश्मन है। मुसलमान उस देश के साथ जुड़ाव नहीं रखता जहाँ वह रहता है, बल्कि वह उस धर्म के साथ जुड़ाव रखता है जिसे वह मानता है।'

अधिक है। इस बात का महत्त्व इससे और भी ज़्यादा बढ़ जाता है जब हम पाते हैं कि उसी समय के आसपास औपनिवेशिक दासता से मुक्त हुए कई देश आज भी प्रजातंत्र के लिए संघर्ष कर रहे हैं। हमारा पड़ोसी पाकिस्तान इसका सटीक उदाहरण है। आज भारत को दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने का गौरव प्राप्त है जहाँ स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों के आधार पर सरकार चुनी जाती है, प्रेस, न्यायपालिका और कार्यपालिका एक-दूसरे से सापेक्षतया स्वतंत्र कार्य करते हैं और निम्न वर्गों के उत्थान के लिए बराबर सकारात्मक क़दम उठाए जाते हैं। यदि हम ऐसा ढाँचा नहीं बना पाते तो निश्चय था कि समाज के विभिन्न वर्गों के बीच होने वाले हितों के टकराव का कोई शांतिपूर्ण हल नहीं खोज पाते और दबाव में टूट कर बिखर जाते। एक मज़बूत, लोकतंत्रात्मक राज्य के निर्माण में नेहरू और आम्बेडकर के अवदानों को भुलाया नहीं जा सकता।

यह सही है कि सोवियत यूनियन के पतन के बाद के बदले वैश्विक माहौल में समाजवाद का विचार और सपना आज खटाई में पड़ गया है। भूमण्डलीय पूँजीवाद के रथ को रोकना फ़िलहाल सम्भव नहीं दीखता। इस कारण कई लोग भारत की धीमी आर्थिक प्रगति के लिए नेहरू-आम्बेडकर जैसे नीति निर्माताओं को दोषी ठहराते हैं क्योंकि उन्हीं के प्रभाव से ऐसी समाजवादी आर्थिक नीतियाँ अपनाई गयीं जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र का वर्चस्व था, पंचवर्षीय योजनाएँ थीं, नौकरशाही का आधिपत्य था जो धीरे-धीरे लाइसेंस-परमिट राज्य में बदल गया। वास्तव में यह सच नहीं है। उस समय एक आम सहमति थी कि एक ग़रीब, अभी-अभी औपनिवेशिक दासता से मुक्त हुए देश के विकास के लिए आर्थिक क्षेत्र में राज्य का हस्तक्षेप ज़रूरी है। उसी समय टाटा, बिड़ला जैसे बड़े उद्योगपतियों के हस्ताक्षर से एक 'बम्बई प्लान' सरकार के सामने रखा गया था जिसमें राज्य द्वारा 'इन्फ्रास्ट्रक्चर' में विनियोग और उन्हें बाहरी देशों से प्रतिस्पर्धा से बचाने की अपील की गयी थी। दूसरी पंचवर्षीय योजना के मैनिफ़ेस्टो जिसमें भारी उद्योगों को लगाने की नीति पूरी तरह स्वीकारी गयी थी, को भी 24 में से 23 देश के शीर्षस्थ अर्थशास्त्रियों का समर्थन प्राप्त था। अत: हमें अपना आकलन उस दौर की परिस्थितियों के आधार पर करना चाहिए। आज जब पूँजीवाद का कोई विकल्प नज़र नहीं आ रहा, उसकी वकालत करना नेहरू-आम्बेडकर के समय की ऐतिहासिक ज़रूरतों को नज़रअंदाज़ करना है।

पिछले कुछ वर्षों से नेहरू के सेकुलरवाद को लेकर भी बहुतेरे सवाल उठाए जाते रहे हैं। उसे 'छद्म सेकुलरवाद' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है क्योंकि यह अल्पसंख्यकों के तुष्टीकरण

और बहुसंख्यकों की भावनाओं के अनादर पर टिका है। ये लोग भारत को एक 'हिंदू राज्य' घोषित करवाना चाहते हैं जहाँ हिंदू शब्द धर्म के अर्थ में नहीं सभ्यता-संस्कृति के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। दूसरी ओर गाँधीवादी हैं जो सेकुलरवाद का मतलब 'सर्वधर्म समभाव' से लेते हैं। तीसरा विकल्प भारत को एक बहुधर्मी राज्य घोषित करना है जिसमें सभी धर्मों का प्रतिनिधित्व हो। नेहरू की आधुनिक दृष्टि में राज्य एक सार्वजनिक संस्था है जिसके कार्यकलाप में धर्म की कोई भूमिका नहीं है। धर्म सर्वथा एक निजी मसला है। दिक़्क़त यह है कि भारत में धर्म कभी भी घर की चहारदीवारी में क़ैद नहीं रहा है। निजी जीवन में धार्मिक व्यक्ति सार्वजनिक जीवन में धर्म से तटस्थ नहीं रह पाता। समाज का सेकुलरीकरण हुए बग़ैर राज्य का सेकुलर बने रहना हमेशा एक टेढ़ी खीर है। लेकिन धर्मों की हठवादी नैतिकता और विभिन्न धर्मावलम्बियों के आपसी संघर्ष को देखते हुए आज भी सेकुलरवाद का कोई विकल्प नहीं है। हाँ, जैसा कि आज पश्चिम में भी विचार हो रहा है कि चूँकि धर्म को निजी क्षेत्र तक सीमित नहीं रखा जा सकता इसलिए उसे सार्वजनिक क्षेत्र में अपनी बात रखने की छूट होनी चाहिए लेकिन विमर्श पर एकाधिकार किसी का भी नहीं होना चाहिए। मेरे विचार से बँटवारे के समय हुई साम्प्रदायिक हिंसा के संदर्भ में नेहरू का सेकुलरवाद भारत की एकता के लिए एक ऐतिहासिक ज़रूरत थी। बाद के वर्षों में अपने निहित राजनीतिक स्वार्थों के लिए धर्म का इस्तेमाल करने वालों ने जिस तरह सेकुलरवाद की व्याख्या को तोड़ा-मरोड़ा, उसके लिए नेहरू को दोषी ठहराना उचित नहीं होगा। आज जब सारा विश्व धार्मिक आतंकवाद से जूझ रहा है, धर्म के नकारात्मक पक्ष को नियंत्रित करने के लिए सेकुलरवाद की प्रासंगिकता से इंकार नहीं किया जा सकता।

आम्बेडकर की स्थिति नेहरू से भिन्न है जैसा कि हम पूर्व खण्ड में विवेचित कर चुके हैं। वे धर्म के धनात्मक पक्ष— सामाजिक नैतिकता देने की क्षमता को स्वीकार करते हुए अपने आधुनिकता के प्रोजेक्ट को उससे जोड़ना चाहते हैं। इस दृष्टि से वे धर्मों में अंतर पाते हैं और अपने अध्ययन और अनुभव से यह परिणाम निकालते हैं कि उनके द्वारा संशोधित बौद्ध धर्म ही यह कार्यभार उठाने में सक्षम है। इससे बहुत सारे प्रश्न उठ खड़े हुए। हिंदू धर्म की परम्परा के घोर विरोधी का एक दूसरी धर्म-परम्परा में शरण लेना कुछ विद्वानों की दृष्टि में दलित मुक्ति संघर्ष को पीछे धकेलना था। लेकिन अन्य की दृष्टि में यह उस शून्य को भरने का प्रयास था जो पश्चिम में आधुनिकता के अनुभव से उभरा है। अतिशय व्यक्तिवाद, बेगानगी, संबंधों का वस्तुकरण और जीवन का एक आयामी उपभोक्तावाद आज आधुनिकता के पश्चिमी प्रोजेक्ट पर पुनर्विचार की माँग कर रहा है। ऐसे में आम्बेडकर के प्रयास का औचित्य नकारा नहीं जा सकता। हाँ, यह दूसरी बात है कि वे इस प्रयास में कहाँ तक सफल हुए और आज वह कितना प्रासंगिक है। यह सही है कि आम्बेडकर के बाद बौद्ध धर्म में दीक्षा लेने वालों की संख्या काफ़ी कम है और दलित संघर्ष की दशा-दिशा काफ़ी बदल चुकी है लेकिन इससे दलितों के संघर्ष में उनके योगदान का महत्त्व कम नहीं होता। सदियों से ग़ैरबराबरी वाले समाज में दलितों को समान नागरिकता का संवैधानिक अधिकार और आरक्षण की नींव रखने के लिए उन्हें हमेशा याद किया जाएगा। लेकिन हमें नहीं भूलना चाहिए कि वे केवल दलितों के मसीहा नहीं थे। वे राष्ट्र-निर्माता थे जिन्होंने परम्परा और आधुनिकता के द्वंद्व को नेहरू से ज़्यादा अच्छी तरह समझा था और उनका एक हल देने का प्रयास भी किया था। नेहरू जहाँ पूर्व-आधुनिकता से कन्नी काट करके निकल गये वहीं आम्बेडकर ने उसमें हस्तक्षेप करके उससे लोहा लेने की ठानी। हिंदू परम्परा का विरोध किया तो बौद्ध परम्परा की भी आधुनिकता के मानदण्डों पर समीक्षा की। इस तरह पश्चिमी आधुनिकता के बजाय एक वैकल्पिक आधुनिकता की नींव रखी।

आज जब हम दोनों राष्ट्र-निर्माताओं के अवदानों का मूल्यांकन करते हैं तो पाते हैं कि उनके द्वारा आधुनिकीकरण को प्राथमिकता देना उचित ही था। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए था कि पश्चिम में आधुनिकता के साथ जुड़े तत्त्व— तार्किकता, व्यक्तिवाद, उदारतावादी लोकतंत्र, राष्ट्र-राज्य,

प्रौद्योगिकी, वैज्ञानिक विश्वदृष्टि, उपयोगितावाद और अर्थवाद, एक दूसरे से तार्किक रूप से नहीं ऐतिहासिक रूप से जुड़े हुए थे। अत: अलग-अलग समाजों में इन तत्त्वों को अलग-अलग ढंग से समायोजित करने की आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता। इसी प्रक्रिया से अपने ढंग की अनूठी आधुनिकता का सृजन सम्भव था। गाँधी सहित अनेक विचारकों ने आधुनिकता के अँधेरे पक्ष की ओर भी ध्यान दिलाया है। यह दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि स्वतंत्र भारत के दो दिग्गज चिंतक नेताओं ने राष्ट्र-निर्माण में उनकी बातों को नज़रअंदाज़ किया। यदि ऐसा न होता तो शायद भारतीय गाँव, प्राइमरी शिक्षा, संस्कृति पर हम ज़्यादा ध्यान देते और हमारी आधुनिकता एक समन्वित आधुनिकता होती केवल मध्य और उच्च वर्गों की आधुनिकता नहीं।

उपरोक्त आलोचना का अर्थ किसी भी तरह दोनों, नेहरू और आम्बेडकर के अवदानों को कम करके आँकना नहीं है। दोनों ही पश्चिम में पल्लवित आधुनिकता से दूर तक प्रभावित थे। किंतु जहाँ नेहरू ने उसका उपयोग औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध संघर्ष और स्वतंत्रता के बाद एक मज़बूत प्रजातंत्रात्मक समाजवादी राष्ट्र-राज्य की स्थापना, जो एक हिंदू-पाकिस्तान नहीं था, के लिए किया वहीं आम्बेडकर ने हिंदू धर्म को ही अपना मुख्य निशाना बनाया। आम्बेडकर से पहले भी कई समाज सुधारकों जैसे दयानंद, विवेकानंद और गाँधी आदि ने जाति व्यवस्था में सुधार के प्रयत्न किये थे किंतु वे सब हिंदू धर्म के अंतर्गत ही सुधार के प्रयत्न थे। जबकि आम्बेडकर ने जाति व्यवस्था के लिए हिंदू धर्म को ही ज़िम्मेदार मानते हुए उसी के अंत का क्रांतिकारी कार्यक्रम चलाया। इस दृष्टि से वे ज्योतिबा फुले और ई.वी. रामस्वामी नायकर पेरियार की परम्परा में आते हैं। पूँजीवाद से दोनों का ही विरोध था लेकिन एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना के लिए अन्यायपूर्ण हिंदू धर्म परम्परा से संघर्ष की अहमियत जितनी आम्बेडकर ने समझी, उतनी नेहरू ने नहीं। भारत की राजनीति में यह मुद्दा इतना प्रभावी हुआ कि दोनों के जाने के वर्षों बाद जब एक संस्था ने इस बात का सर्वे किया कि गाँधी के बाद महानतम भारतीय कौन हैं तो यह स्थान आम्बेडकर को ही मिला।[8] वे दलितों के मसीहा ही नहीं, हिंदू समाज के सुधारक भी थे।

संदर्भ

अनन्या वाजपेयी (2015), *द राइटिअस रिपब्लिक,* हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लंदन.

एस. जोंडेल तथा बेल्त्ज़ (सं.)(2004), *रिस्ट्रक्चरिंग द वर्ल्ड : बी.आर. आम्बेडकर ऐंड बुद्धिज़म इन इण्डिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

उमा आयंगर (सं.)(2007), *द ऑक्सफ़र्ड इण्डिया नेहरू,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

क्रिस्तॉफ़ जैफ़रलो (2009), *डॉ. आम्बेडकर ऐंड अनटचेबिलिटी,* परमानेंट ब्लैक, नयी दिल्ली.

गेल ऑम्वेट (1995, 2008), *दलित विज़ंस,* ऑरियंट लॉन्गमैन, नयी दिल्ली.

------ (2004), *आम्बेडकर : टूवर्ड्स ऐन ऐनलाइटेंड इण्डिया,* पेगुइन, नयी दिल्ली.

गोपाल गुरु (2001), 'द मैन हू थॉट डिफ़रेंटली : ऐन इंक्वायरी इन टू द पॉलिटिकल थिंकिंग ऑफ़ डॉ. आम्बेडकर', के.सी. यादव (सं.), *फ्रॉम पेरिफ़री टू सेंट्रल स्टेज,* मनोहर पब्लिशर्स, नयी दिल्ली.

घनश्याम शाह (सं.)(2001), *दलित आइडेंटिटी ऐंड पॉलिटिक्स,* सेज पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली.

जवाहरलाल नेहरू (1939), *ग्लिम्पेज ऑफ़ वर्ल्ड हिस्ट्री,* लिंडसे हैमण्ड, लंदन.

-----------(1946), *द डिस्कवरी ऑफ़ इण्डिया,* द जॉन डे कम्पनी, न्युयॉर्क.

-----------(1954), *जवाहरलाल नेहरूज़ स्पीचेज़,* खण्ड 2, पब्लिकेशन डिवीज़न, मिनिस्ट्री ऑफ़ इनफ़ॉर्मेशन

[8] *सीएनएन-आइबीएन* का सर्वेक्षण, *जनसत्ता,* 30 सितम्बर, 2012.

ऐंड ब्रॉडकास्टिंग, गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया.

-----------(1980), *ऐन ऑटोबायोग्रैफ़ी,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

डॉनल्ड यूजेन स्मिथ (1985), *नेहरू ऐंड डेमॉक्रैसी : द पॉलिटिकल थॉट ऑफ़ ऐन एशियन डेमॉक्रैट,* ऑरियंट लांगमैन, कलकत्ता.

थॉमस पैंथम तथा कैनेथ एल. ड्यूश (सं.)(1986), *पॉलिटिकल थॉट इन मॉडर्न इण्डिया,* सेज पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.

देबजानी गांगुली (2005), *कास्ट, कोलोनियलिज़्म ऐंड काउंटर-मॉडर्निटी,* रूटलेज, न्युयॉर्क.

धनंजय कीर (1962), *डॉ. आम्बेडकर : लाइफ ऐंड मिशन,* पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे.

नयनतारा सहगल (2010), *जवाहरलाल नेहरू : सिविलाइज़िंग अ सैवेज वर्ल्ड,* पेंग्विन, नयी दिल्ली.

बी.आर. नंदा (2008,1962), *द नेहरूज़ : मोतीलाल ऐंड जवाहरलाल,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

भगवान दास (सं.)(2010), *दस स्पेक आम्बेडकर,* नवायन पब्लिशिंग, नयी दिल्ली.

भीमराव आम्बेडकर (1979), *ऐनिहिलेशन ऑफ़ कास्ट, डॉ. आम्बेडकर राइटिंग्ज़ ऐंड स्पीचेज़,* खण्ड 1, एजुकेशन डिपार्टमेंट ऑफ़ महाराष्ट्र, बॉम्बे.

------------ (1987), *बुद्धा ऑर कार्ल मार्क्स* खण्ड-3.

------------ (1987), *रेवोल्यूशन ऐंड काउंटर-रेवोल्यूशन,* खण्ड-3.

------------ (1941), *थॉट्स ऑन पाकिस्तान,* थैकर ऐंड कम्पनी, बॉम्बे.

------------ (1945), *पाकिस्तान आर द पार्टीशन ऑफ़ इण्डिया,* थैकर ऐंड कम्पनी, बॉम्बे.

------------ (1946), *हू वर शूद्राज़? हाउ दे केम टू बी द फोर्थ वर्ण इन द इण्डो-आर्यन सोसाइटी,* थैकर ऐंड कम्पनी, बॉम्बे.

------------ (1948), द *अनटचेबल्स : अ थीसिस ऑन द ऑरिजिन ऑफ़ अनटचेबिलिटी,* अमृत बुक कम्पनी, नयी दिल्ली.

------------ (1957), द *बुद्धा ऐंड हिज धम्मा,* बुद्ध भूमि पब्लिकेशन, नागपुर.

माइकेल ब्रीशर (1962, 1998), *नेहरू : अ पॉलिटिकल बायोग्रैफ़ी,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

रामचंद्र गुहा (2004), 'रिफॉर्मिंग द हिंदूज़', *द हिंदू,* 18 जुलाई.

--------(2005), 'वर्डिक्ट्स ऑन नेहरू : राइज़ ऐंड फ़ॉल ऑफ़ अ रेप्यूटेशन', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 40, अंक 19.

--------(2010), *मेकर्स ऑफ़ मॉडर्न इण्डिया,* पेंगुइन बुक्स, नयी दिल्ली.

वसंत मून (1994), 'ड्राफ़्ट कॉन्स्टीट्यूशन-डिस्कशन', *डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर राइटिंग्ज़ ऐंड स्पीचेज़,* खण्ड 13, गवर्नमेंट ऑफ़ महाराष्ट्र.

वाल्टर क्रोकर (2008), *नेहरू : अ कंटेम्पररी ऐस्टीमेट,* रैंडम हाउस, नयी दिल्ली.

वैलेरियन रोड्रिग्ज़ (सं.)(2002), द *इसेंशिएल राइटिंग्ज़ ऑफ़ बी.आर. आम्बेडकर,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

शशि थरूर (2003), *नेहरू : द इन्वेंशन ऑफ़ इण्डिया,* पेंग्विन, नयी दिल्ली.

संघरक्षित (2006), *आम्बेडकर ऐंड बुद्धिज़्म,* मोतीलाल बनारसीदास, नयी दिल्ली.

सर्वपल्ली गोपाल (1989), *जवाहरलाल नेहरू : अ बायोग्राफ़ी,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

सुखदेव थोराट तथा नरेंद्र कुमार (2008), *बी.आर. आम्बेडकर : पर्सपेक्टिव्ज़ ऑन सोशल एक्सक्लूज़न ऐंड इनक्लूज़िव पॉलिसीज़,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

सुनील खिलनानी (1998), द *आइडिया ऑफ़ इण्डिया,* पेंग्विन बुक्स, नयी दिल्ली.